भारतीय कला में प्रतीकों का उद्भव एवं विकास

डॉ० दीप्ति मिश्रा *

कला मानव मस्तिष्क की प्रखरतम एवं उच्चतम कल्पना है। मनुष्य के सृजनात्मक बाह्य मूर्त रूप को, जिसमें संतुलन, अनुपात और सामंजस्य है, कला की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। कला के माध्यम से मनुष्य ने अपने हृदय में उठने वाले विचारों को साकार रूप प्रदान किया। मात्र भौतिक जगत को मूर्त या साकार कर देना कला का श्लाघनीय कार्य नहीं है, अपितु कला अमूर्त भावों, विचारों, मान्यताओं तथा धार्मिक एवं आध्यात्मिक सिद्धान्तों को साकार बनाने का भी विशिष्ट कार्य करती है।

कला को प्रायः धर्म की अनुगामिनी कहा गया है। किसी भी देश की धार्मिक मान्यताएँ, उसके पौराणिक देवी–देवता, उसके आचार–विचार एवं उसकी नीति–परम्पराएँ वहाँ की कला में ही अभिव्यक्ति पाते हैं।[1]

कला के दो मुख्य तत्त्व होते हैं– रूप और भाव। किसी विशेष विचार की अभिव्यक्ति के लिए कला में रूप का उपयोग किया जाता है, किन्तु मुख्य और महत्त्वपूर्ण तत्त्व विचार अथवा भाव है। रूप शरीर है, विचार या भाव उसकी आत्मा है। इस प्रकार कला जीवन और विचारों के पारस्परिक सम्बन्धों को प्रतिबिम्बित करती है। कला देश की सांस्कृतिक प्रगति का प्रतिबिम्ब अथवा दर्पण है। उसमें देश की युग–युग की प्रगति प्रतिबिम्बित होती है। भारतीय कला भी भारतीय जीवन, समाज एवं संस्कृति का दर्पण है। यहाँ के धर्म, दर्शन और संस्कृति कला में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुए हैं। वस्तुतः भारतीय प्रतिभा और इस देश के कृतित्व का सबसे सुन्दर प्रमाण कला के अद्भुत नमूनों में ही है। कला और जीवन का जैसा अद्भुत सामंजस्य इस देश में हुआ है, वैसा शायद और कहीं नहीं हुआ है। इस सामंजस्य ने कला और जीवन दोनों को विकसित और समृद्ध किया है। भारतीय कला वस्तुतः लोक को

* प्राभारी सहायक उप शिक्षा निदेशक, राज्य शिक्षा संस्थान, उ0प्र0, प्रयागराज

परलोक से मिलाने वाली सेतु है। यह भौतिक और आध्यात्मिक जगत का मिलन बिन्दु है। भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति भारतीय कला में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुए हैं। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए भारतीय कलाकारों ने प्रतीकों का सहारा लिया है। भारतीय कला में प्रतीकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कला में स्थूल–जगत का अंकन एक सामान्य कार्य है, किन्तु सूक्ष्म और निराकार विचारों, विश्वासों, मान्यताओं, परम्पराओं को दर्शक के समक्ष आकार बनाना अत्यन्त दुरूह और महत्त्वपूर्ण कार्य है, और इस कार्य को भारतीय शिल्पियों ने प्रतीकों की उद्‌भावना करके सफलतापूर्वक सम्पन्न किया है।

प्रतीक वस्तुतः उदात्त, गूढ़ धार्मिक एवं दार्शनिक भावों तथा आध्यात्मिक मान्यताओं का स्थूल रूप हैं। ये प्रतीक केवल विचारों एवं भावों को ही अभिव्यक्त नहीं करते, अपितु शोभा, आरक्षा और मांगलिक भावों की सृष्टि भी करते हैं। इसके साथ ही साथ वे शारीरिक व मानसिक सौन्दर्य–बोध का परिष्कार भी करते हैं। भारतीय कला के इन प्रतीकों में अन्तर्निहित मर्म को समझे बिना भारतीय कला में प्रतिबिम्बित जीवन और संस्कृति को ठीक से समझ पाना यदि असंभव नहीं, तो कठिन अवश्य है। इसीलिए इन प्रतीकों को भारतीय कला की वर्णमाला कहा गया है। विभिन्न विचारों, मान्यताओं एवं विश्वासों को इन प्रतीकों ने साकार कर दिया है।[2]

भारतीय कला में प्रतीकों का उद्‌भव अनेक कारणों से हुआ। शोभा, आरक्षा एवं कल्याण की भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए सर्वप्रथम मांगलिक प्रतीकों की सर्जना हुई होगी। इन मांगलिक प्रतीकों में पद्‌म, स्वस्तिक, पूर्णघट, चक्र, मीन, मिथुन, शंख, सूर्य, चन्द्र, माला, छत्र, वृक्ष, हस्ति आदि सम्मिलित हैं। कालान्तर में इन मांगलिक प्रतीकों का एक सामूहिक रूप 'अष्टमंगल' विशेष रूप से लोकप्रिय हो गया। किन्हीं भी आठ मांगलिक प्रतीकों के सामूहिक अंकन को 'अष्टमांगलिक प्रतीक' कहा जाने लगा। इन मांगलिक एवं अष्टमांगलिक प्रतीकों को जैन, बौद्ध, ब्राह्मण आदि सभी धार्मिक सम्प्रदायों ने समान रूप से संपूजा तथा सम्मानित स्थान प्रदान किया। ये प्रतीक भारतीय कला में विविध माध्यमों से अभिव्यंजित हुए। वास्तुकला में विशेषकर जैन एवं बौद्ध स्तूपों के तोरणों एवं वेदिकाओं में बोधिवृक्ष, चक्र, त्रिरत्न, स्तूप, पादुका, नन्दिपद, आदि प्रतीकों को, अभिलेखों के प्रारम्भ अथवा अंत में स्वस्तिक, नन्दी, नन्दीपद, श्रीवृक्ष, पद्‌म आदि प्रतीकों को, सिक्कों पर चक्र, स्वस्तिक, श्रीवत्स, मीन–मिथुन, त्रिरत्न आदि, मृद्‌भाण्डों पर श्रीवत्स, चक्र, पद्‌म, स्वस्तिक आदि प्रतीकों को तथा प्रतिमाओं पर श्रीवत्स, हथेलियों एवं तलुओं पर चक्र, त्रिरत्न आदि प्रतीकों को अंकित किया गया है।[3]

भारतीय कलाकारों ने प्रायः सभी धर्मों से सम्बद्ध दैवी एवं मानवेतर शक्तियों को उद्घाटित करने के लिए प्रतीकों का सहारा लिया है। इन प्रतीकों में सूर्य, चन्द्र, चक्र, कमल, बोधिवृक्ष, स्तूप, नाग, हाथी पदचिह्न आदि सम्मिलित हैं।

वस्तुतः भारत में ब्राह्मण, जैन एवं बौद्ध धर्म में प्रतीक पूजा के माध्यम से ही मूर्ति–पूजा का विकास हुआ होगा। इन धर्मों के अनुयायियों ने अपनी भक्ति–भावना की तुष्टि हेतु सर्वप्रथम प्रतीकों का ही सहारा लिया तथा उनकी पूजा करना प्रारम्भ किया। इस तथ्य की पुष्टि पुरातात्विक साक्ष्यों से भी होती है। द्वितीय शताब्दी ई0पू0 का एक अभिलेख राजस्थान के नागरी (चित्तौड़गढ़) नामक स्थान से मिला है। इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि अश्वमेघ यज्ञ करने वाले एक भागवत राजा सर्वतात् ने संकर्षण, वासुदेव की नारायण वाटिका (मन्दिर) के चतुर्दिक एक वेदिका बनवायी थी। अभिलेख इस प्रकार है–

कारितो अयं राजा भागवतेन गाजायनेन पराशरिपुत्रेण,
सर्वतातेन अश्वमेधयाजिना भगवद्भ्यां संकर्षण वासुदेवाभ्यं,
अनिहताभ्यां सर्वेश्वराभ्यां पूजा–शिला प्राकारो नारायण वाटिका[4]

अभिलेख में उल्लिखित 'पूजा–शिला' पद के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि संभवतः संकर्षण, वासुदेव की पूजा के लिए मात्र कोई शिलाफलक रहा होगा जो मूर्ति निर्माण से पहले की क्रमिक अवस्था में देवता का प्रतीक माना जाता था तथा जिसकी पूजा अर्चना की जाती थी।[5] इसी फलक के चारों ओर वेदिका का निर्माण किया गया होगा। इस तथ्य की पुष्टि मथुरा (उ0प्र0) से प्राप्त जैन आयाग पट्टों से भी हो जाती है। ये जैन आयाग पट्ट चौकोर शिला पट्ट मात्र थे तथा इस पर जैन तीर्थंकर की मूर्तियाँ अथवा अष्टमांगलिक प्रतीकों के अंकन थे और इन्हें पूजार्थ जैन–स्तूप के चारों ओर चबूतरों पर स्थापित किया गया था।[6]

इसी प्रकार द्वितीय शताब्दी ई0पू0 में यवन राजदूत हेलियोडोरस द्वारा विदिशा (म0प्र0) में गरुण ध्वज स्थापित करने का अभिलेखिक एवं पुरातात्विक उदाहरण प्राप्त होता है। हेलियोडोरस ने भगवान वासुदेव के प्रति अपनी भक्ति–भावना को प्रकट करने हेतु विदिशा में विष्णु मंदिर के समक्ष गरुण ध्वज का निर्माण कराया था (देव देवस वासुदेवस गरुण ध्वजेयं कारिते इय हेलियोदोरेण भागवतेन)।[7] इसी प्रकार विदिशा क्षेत्र से ही गरुण ध्वज के अतिरिक्त ताल–ध्वज और मकर–ध्वज के शीर्ष प्राप्त हुए हैं। ये शीर्ष विदिशा क्षेत्र में वासुदेव सम्प्रदाय के प्रचार–प्रसार एवं पूजा पर विशेष प्रकाश डालते हैं, क्योंकि जहाँ गरुण–ध्वज स्वयं वासुदेव का प्रतीक था, वहीं ताल–ध्वज इनके ज्येष्ठ भ्राता संकर्षण का एवं मकर–ध्वज उनके पुत्र प्रद्युम्न का प्रतीक था [8]।

इस प्रकार यह पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाता है कि द्वितीय एवं प्रथम शताब्दी ई0पू0 में वैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत प्रतीक पूजा प्रचलित थी। गरुण–ध्वज, ताल–ध्वज एवं मकर–ध्वज क्रमशः वासुदेव (विष्णु) संकर्षण (बलराम) तथा प्रद्युम्न के प्रतीक थे और पूजा शिला भी संभवतः मात्र उनका प्रारम्भिक प्रतीक था। भारत में आज भी प्रायः गाँवों में पीपल, नीम, बरगद आदि वृक्षों के नीचे चबूतरे पर रखे हुए विभिन्न आकार–प्रकार वाले शिला–खण्डों को देवी–देवता के रूप में पूजे जाते हुए देखा जा सकता है।[9]

वैष्णव सम्प्रदाय के समान शैव–सम्प्रदाय में भी शिव के प्रतीक स्वरूप लिंग की पूजा की परम्परा अति प्राचीन है तथा आज भी शिव की मानव–मूर्ति के साथ–साथ शिवलिंग की भी पूजा की जाती है। शिवलिंग का प्राचीनतम अंकन हमें सिन्धु सभ्यता के अनगिनत प्रस्तरों में परिलक्षित होता है। आहत–सिक्कों पर भी शिवलिंग का स्वरूप द्रष्टव्य है। मथुरा से लगभग प्रथम शती ई0पू0 का एक उत्कीर्ण फलक प्राप्त हुआ है। इस फलक पर वेदिका से घिरे हुए वृक्ष के नीचे शिवलिंग स्थापित दिखाया गया है।[10] शिवलिंग के साथ–साथ शिव के स्वरूप के कतिपय और प्रतीक भी अंकित होने लगे थे। इनमें नन्दी, त्रिशूल, चन्द्र उल्लेखनीय हैं। इनके अभाव में कालान्तर में शिव की मूर्ति की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। शिव–मंदिरों के समक्ष नन्दी की प्रतिमा की स्थापना उसी प्रकार प्रचलित हो गई थी, जिस प्रकार विष्णु के मंदिर के समक्ष गरुण–ध्वज की।[11] इस प्रकार शिव की मानव–मूर्ति के विकास के पहले लिंग, नन्दी या वृषभ तथा त्रिशूल मुख्य रूप से शैव–पूजा के प्राथमिक प्रतीक कहे जा सकते हैं।

बौद्ध धर्मावलम्बियों ने भी भगवान बुद्ध तथा बोधिसत्वों की मूतियाँ बनाने के पहले उनके प्रतीक स्वरूप का पूजन करना प्रारम्भ कर दिया था। यद्यपि बौद्ध–धर्म की हीनयान विचारधारा में बुद्ध की मानव–मूर्ति बनाकर उनकी पूजा का प्रचलन नहीं था।[12] परन्तु जब द्वितीय शताब्दी ई0 पू0 में बौद्ध धर्मावलम्बी भक्ति–आन्दोलन से प्रभावित हुए तो वे भी ब्राह्मण एवं जैन धर्मावलम्बियों के समान भगवान बुद्ध की पूजा–अर्चना का उपाय सोचने लगे। फलतः उन्होंने तथागत की पूजा के निमित्त अनेकों प्रतीकों की उद्भावना एवं सर्जना कर डाली, जैसे– हाथी–तथागत के जन्म का, अश्व–महाभिनिष्क्रण का (गृहत्याग का), बोधिवृक्ष–संबोधि का, धर्मचक्र उनके प्रथम प्रवचन का, स्तूप उनके महापरिनिर्वाण का तथा त्रिरत्न–बुद्ध, धम्म तथा संघ के संगठित स्वरूप का परिचायक बन गया। इसके अतिरिक्त आसन, पदचिह्न तथा छत्र भी बुद्ध की उपस्थति के प्रतीक मान लिए गए।[13]

भरहुत, साँची, बोधगया, मथुरा, अमरावती, नासिक, जुन्नार, कार्ले, अजन्ता, कौशाम्बी आदि अनेक बौद्ध कला–केन्द्रों में उपरोक्त बौद्ध–प्रतीकों का अत्यन्त प्रचुरता के साथ विविध अंकन किया गया है।

धर्मचक्र, स्तूप, त्रिरत्न तथा वेदिका से घिरे हुए बोधिवृक्षों के प्रतीक लगभग सभी बौद्ध–कला केन्द्रों में अंकित देखे जा सकते हैं। इन प्रतीकों के ऊपर लगे हुए छत्र तथा हाथ जोड़े हुए नर–नारी उनके संपूज्य स्वरूप के साक्षात् प्रमाण हैं।[14]

प्रतीक–पूजा का ऐसा ही स्वरूप जैन–धर्म में भी प्राप्त होता है। जैन धर्मावलम्बियों ने भी तीर्थंकर की मानव मूर्तियाँ बनाने के पूर्व उनके प्रतीक रूप का पूजन प्रारम्भ कर दिया था। जैन धर्मावलम्बी प्रारम्भ में तीर्थंकरों की पूजा प्रस्तर के चौकोर शिला पट्टों पर करते थे, जिन्हें 'आयागपट्ट' कहा जाता था।[15] 'आयाग' शब्द संस्कृत के आर्यक से निकला है, जिसका अर्थ विद्वानों ने 'पूजनीय' ग्रहण किया है। मथुरा के कंकाली टीले के उत्खनन से बड़ी मात्रा में जैन–धर्म से सम्बद्ध आयाग–पट्ट प्राप्त हुए हैं। इन आयाग–पट्टों का कोई वास्तुगत उपयोग नहीं था। ये आयाग–पट्ट पूजार्थ स्वतंत्र प्रस्तर फलक थे। इनका उपयोग मात्र अर्हत–पूजा के लिए किया जाता था। इस तथ्य की पुष्टि लोण शोभिका की पुत्री वसु द्वारा स्थापित एक आयाग–पट्ट अभिलेख से हो जाती है, जिसमें उल्लिखित है कि यह आयाग पट्ट अर्हत की पूजा के लिए था। (अर्हत पूजाये)।[16]

मथुरा से प्राप्त आयाग–पट्टों पर तीर्थंकर की बैठी हुए मूर्ति को तथा अष्ट मांगलिक प्रतीकों को उत्कीर्ण किया गया था। इन आयाग–पट्टों पर श्रीवत्स, त्रिरत्न, सोलह पट्टियों वाले विशाल चक्र, स्वस्तिक, मीन–मिथुन, वर्द्धमान, वैजयन्ती, मंगल–कलश, चक्र–ध्वज, वेदिका, तोरण तथा सोपान से युक्त स्तूप आदि का अंकन है। कुछ आयाग–पट्टों पर तीर्थंकरों की मूर्तियाँ भी मिलती हैं। इससे यह सूचित होता है कि ये आयाग–पट्ट उस काल की पूजा का स्वरूप प्रकट करते हैं, जब प्रतीक पूजा का प्रचलन तो था ही, साथ ही साथ मूर्तिपूजा का भी प्रारम्भ हो रहा था। कुछ आयाग–पट्टों पर दोनों का मिला–जुला रूप भी प्रस्तुत है। ये आयाग–पट्ट जैन–धर्म में प्रतीक–पूजा एवं मूर्तिपूजा के संधिकाल के परिचायक कहे जा सकते हैं।[17]

वस्तुतः जैन–धर्मावलम्बियों द्वारा संपूजित ये आयाग–पट्ट मांगलिक प्रतीकों के धार्मिक एवं पूज्य स्वरूप के परिचायक तो हैं ही, साथ ही इनके द्वारा प्रतीक–पूजा के माध्यम से मूर्तिपूजा का उद्भव भी स्वतः प्रकट हो जाता है।

वस्तुतः भारतीय कला में प्रतीकों का अंकन अत्यन्त प्राचीन काल से ही होने लगा था। कतिपय प्रतीक जैसे– स्वस्तिक, चक्र, वृक्ष आदि प्रगैतिहासिक शैलगुहा चित्रों के अभिचित्रण में तथा सैन्धव सभ्यता की मोहरों तथा मृदभाण्डों पर भी पाये जाते हैं।[18] इसी प्रकार वैदिक युगीन कला एवं साहित्य में भी अनेक प्रतीकों जैसे– स्वस्तिक, श्री लक्ष्मी, पूर्णकुम्भ, चक्र, पद्म, कल्प–वृक्ष, कल्पलता आदि के अंकन का भी उदाहरण मिलता है। इन प्रतीकों का प्रयोग ई0पू0 द्वितीय शताब्दी से लेकर तृतीय शताब्दी ईस्वी

तक भारतीय कला में प्रचुरता से हुआ। गुप्त काल तक आते–आते कुछ ही प्रतीक जैसे– स्वस्तिक, चक्र, पूर्णकुम्भ, मंगलकलश आदि ही प्रधान रह गए और कालान्तर में भारतीय कला में इनका प्रयोग अत्यन्त न्यून हो गया।[19] फिर भी कतिपय प्रतीक जैसे– स्वस्तिक, पूर्ण कुम्भ, हस्ति, सूर्य, चन्द्र आदि भारतीय लोककला में अविच्छिन्न रूप से लोकप्रिय रहे तथा आज भी भारतीय कला में इनका स्वरूपांकन किया जा रहा है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची–

1. श्रीवास्तव ए0एल0, भारतीय कला प्रतीक, पृष्ठ 13–14
2. बरुआ, बेनीमाधव, भरहुत बुक प्प् पृष्ठ संख्या 39
3. श्रीवास्तव, ए0एल0, भारतीय कला प्रतीक, पृष्ठ 14–19
4. एपीग्रैफिआ इण्डिका, वाल्यूम 22, पृष्ठ 203–04, बनर्जी, जितेन्द्र नाथ, रिलीजन इन आर्ट एण्ड आर्कियोलाजी, पृष्ठ 9
5. अग्रवाल, वासुदेव शरण, प्राचीन माध्यमिका की नारायण वाटिका, पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ, पृष्ठ 901–902, बनर्जी जितेन्द्र नाथ, रिलीजन इन आर्ट एण्ड आर्कियोलाजी, पृष्ठ –9
6. अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, पृष्ठ, 238–239
7. सरकार, दिनेश चन्द्र, सेलेक्ट इन्स्क्रिपशन्स, वाल्यूम 1 पृष्ठ 90–91
8. श्रीवास्तव, ए0एल0, भारतीय कला–प्रतीक, पृष्ठ 15
9. श्रीवास्तव, ए0एल0 पूर्वोक्त, पृष्ठ–16
10. जोशी, नीलकण्ठ पुरुषोत्तम, मथुरा स्कल्पचर, चित्र संख्या 10
11. श्रीवास्तव, ए0एल0 पूर्वोक्त, पृष्ठ 16
12. आनन्द के. कुमार स्वामी, हिन्दुइज्म एण्ड बुद्विज्म, पृष्ठ 71
13. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर, पृष्ठ–37–38, 44
14. श्रीवास्तव, ए0 एल0 पूर्वोक्त, पृष्ठ 18
15. जर्नल ऑफ यू0पी हिस्टॉरिकल सोसाइटी, वाल्यूम 23, पृष्ठ 69–71, अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, पृष्ठ 238
16 शर्मा, रमेश चन्द्र, मथुरा म्यूजियम एण्ड आर्ट, पृष्ट–36
17. श्रीवास्तव, ए0 एल0 पूर्वोक्त, पृष्ठ 17
18. पाण्डेय, जे.एन., पुरातत्व विमर्श, पृष्ठ 243, 308–309, 366–69, श्रीवास्तव, ए.एल. पूर्वोक्त, पृष्ठ 19
19 अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, पृष्ठ संख्या 55–56